Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

स्त्री-आत्मकथाओं का मूल्यांकन

राजकुमार अहिरवार*

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र)) भारत

शोध सारांश – बीसवीं शताब्दी बीतते-बीतते हिंदी क्षेत्र की स्त्रियाँ अपना मौन तोड़ती हैं और एक के बाद एक अपनी आत्मकथाएँ साहित्यिक जगत को प्रेषित करती हैं। स्त्री आत्मकथाएँ अपने समय और समाज की तल्ख सच्चाइयों की साक्षी तो हैं ही, इन्हें स्त्री-उत्पीड़न और उनकी प्रतिरोधी चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज भी कहा जा सकता है। ऐसा नहीं है कि स्त्री के उत्पीड़न की ओर पुरुष रचनाकारों की दृष्टि नहीं गयी है, परन्तु खुद भुक्तभोगी न होने के कारण वे स्त्री-उत्पीड़न की तीव्रता को पूर्णता में नहीं समझ सकते हैं। शायद इसीलिए जॉन स्टुअर्ट मिल ने लिखा है कि 'जो ज्ञान पुरुष स्त्रियों से उनके बारे में हासिल करते हैं, भले ही वह उनकी संचित संभावनाओं के बारे में न होकर, सिर्फ उनके भूत और भविष्य के बारे में ही क्यों न हो, तब तक अधूरा और उथला रहेगा जब तक कि स्त्रियाँ स्वयं वह सब कुछ बता नहीं देती, जो उनके पास बताने के लिए है।' इक्कीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में महिला आत्मकथाकारों ने आत्मकथाओं के माध्यम से अपने अतीत के सुख-दु:ख को आम पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय साहस किया है। भारतीय महिला समाज का अतीत गुलामी, अपमान, दरिद्रता, भोग्या, अधिकार-वंचिता, कुल-कलंकिनी, बेचारी, अबला, पराश्रिता, दासी, पत्नी आदि अनेकानेक नामों से भरा पड़ा है। यदि कहीं थोड़ा सा सम्मान प्रदर्शित होता है तो सिर्फ 'माँ' की उपाधि में ही। चूँकि भारतीय नारी अपने अतीत में न तो स्वतंत्र रही है और न ही शिक्षित और धनवान। भारतीय समाज व्यवस्था के तथाकथित पोषक धर्मग्रंथों ने तो सदैव नारी को परतंत्र रखने का ही प्रवचन किया है। 'मनुस्मृति' नामक ग्रंथ यह उद्घोष करता है कि स्त्री बाल्यावस्था में पिता के, युवा-अवस्था में पति के, और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में अपना जीवन व्यतीत करेगी। तुलसीदास की रामचरित मानस भी 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी' को सदैव प्रताड़ित करने का उद्घोष करती है। नारी के प्रति सामाजिक-धार्मिक-आर्थिक और राजनीतिक अंकुशों ने सदैव क्रूर व्यवहार किया है। किसी अपराध में स्त्री की संलग्नता न होते हुए भी उसे अपराधी करार दिया गया है और यदि किसी स्त्री या अन्य किसी ने विरोध किया है, तब बलात स्त्री के मत्थे दोष मढ़कर उसे दण्डित किया गया है। इन्द्र और अहल्या का पौराणिक प्रसंग इस तथ्य की गवाही देता है कि पुरुष अपनी नाकामी या अपराध छिपाने के लिए स्त्री पर दोष मढ़ता है और पुरुष मानसिकता का संरक्षण करता है; अन्यथा की स्थिति में इन्द्र को पाषाण होने का शाप गौतम ऋषि द्वारा दिया जाना चाहिए था न कि अहल्या को पत्थर बनाना था।

शब्द कुंजी:– स्त्री-उत्पीड़न, पौराणिक प्रसंग, नारी-संरक्षण, जीवन-साथी, पुरुष-समाज, जलकुक्कड़, आदर्शवाद, नैतिकता, मानसिक वेदना, दैहिक संतुष्टि, संविधान, पतिव्रता, इज्जत-आबरू, पितृसत्ता, मिथक, शारीरिक संबंध, सामंतवाद, सफेदपोश।

प्रस्तावना – हजारों सालों की दासता से मुक्ति का मार्ग नारियों को भारतीय स्वतंत्रता और संविधान ने दिया है। वर्तमान युग की नारियाँ बेबाकी के साथ अपने अतीत को बड़ी साफगोई, स्पष्टता और तर्कों के साथ उस कथा-व्यथा को व्यक्त कर रही हैं, जिन्हें उन्होंने स्वयं भोगा है। 'अन्या से अनन्या' (प्रभा खेतान), 'गुड़िया भीतर गुड़िया', 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (मैत्रेयी पुष्पा), 'एक कहानी यह भी' (मन्नू भण्डारी), 'दरकती दीवारों से झाँकती जिंदगी' (डॉ0 अहिल्या मिश्र), 'आपहुदरी', 'हादसेय (रमणिका गुप्ता), 'शिकंजे का दर्द' (सुशीला टाकभौरे) आदि की आत्मकथाएँ यह बताने में सक्षम हैं कि पुरुष समाज स्त्रियों के साथ न्याय नहीं करता है। वह उस तरह की आजादी महिलाओं को देने के पक्ष में नहीं हैं, जिसे वह स्वयं भोगता है। मन्नू भण्डारी अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में अपने पिता और पिता के मित्र के आपसी संवाद में यह उल्लेख किया है कि महिलाएँ सिर्फ घर की शोभा हैं, उन्हें बाहर पुरुषों के साथ बैठना-उठना उचित नहीं है– 'अरे उस मन्नू की तो मत मारी गई है भण्डारी जी, पर देखते आप, जाने कैसे-कैसे उल्टे-सीधे लड़कों के साथ हड़तालें करवाती, हुड़दंग करती फिर रही है वह। हमारे आपके घरों की लड़कियों को शोभा देता है यह सब? कोई मान-मर्यादा, इज्जत-आबरू का खयाल भी रह गया है आपको या नहीं।'[1] पुरुष मानसिकता में, उसके संस्कारों में स्त्री का पतिव्रता होना अत्यावश्यक है; अन्यथा की स्थिति में शायद पुरुष का अस्तित्व ही नष्ट होने लगता है, तभी तो आत्मकथा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का पति डॉ0 शर्मा अपने साथी डॉ0 सिद्धार्थ और मैत्रेयी के साथ-साथ नृत्य करने पर जल-भुँज जाता है। उसे शायद यह विश्वास हो जाता है कि एक स्त्री का पराये मर्द के साथ खान-पान करना, पार्टी करना, नाच-गाना करना उसके चरित्र का पतन है। इसी घटना को लेकर डॉ0 शर्मा पत्नी मैत्रेयी को ताना मारते हुए कहते हैं कि– 'सुनो कि लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ0 नहीं भा रहे हैं। लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ0 सिद्धार्थ डुगडुगी की तरह नचा...' [2] रहा है। घटिया मानसिकता का पुरुष सदैव इस पाले हुए डर से डरता है कि कहीं उसकी पत्नी का किसी पर-पुरुष से शारीरिक संबंध न हो जाए या उसे छोड़कर न चली जाए। इस डर से मुक्ति के लिए वह नारी (पत्नी या प्रेमिका) को हमेशा अपनी निगरानी में रखना चाहता है; जबकि स्त्री पुरुष के इस व्यवहार को अपना अपमान

समझती है। वह चाहती है कि उसका भी एक निजी जीवन है जिसे वह खुलकर जीना चाहती है, परन्तु डॉ0 शर्मा (मैत्रेयी पुष्पा का पति) जैसा पुरुष स्त्री की इच्छा और सोच पर अपना कब्जा बनाये रखना चाहता है; तभी तो डॉ0 शर्मा मैत्रेयी पुष्पा को उस हॉस्टल से अलग अन्यत्र आवासीय कालोनी में किराये से रखना चाहता है; जहाँ पर उसके दोस्त और सहकर्मी डॉक्टरों की नजर मैत्रेयी पर न पड़ सके। 'मेरा जीवनसाथी, साथी के नाम पर जलकुक्कड़ आदमी है। दिशाओं में जब रंग बिखरने शुरू होते हैं, कालिख पोतने आ जाता है। मैं दाँत पीसती रही। सँकरे रास्तों वाली जगह तलाश रहे हो कि पत्नी को बचा ले जाओ। कोई तुमसे पूछे, तुम्हारे दोस्तों की खातिरदारी में मैं किसके कारण लगी? ये मेरे दोस्त नहीं थे। हाँ दोस्त बन जाएँ, यही डर तुम्हारी उदारता और सद्भावना को चबाने लगा, विश्वास को खाने लगा कि बीबी कभी पतिव्रत की लक्ष्मण रेखा न लाँघ जाए।'[3] इक्कीसवीं सदी के प्रथम दो दशक में स्त्रियों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ साहित्य के लिए एक उपलब्धि साबित हुई है; क्योंकि साहित्य-जगत् में स्त्री रचनाकारों ने कविता, कहानी, उपन्यास के माध्यम से आमजन के लिए, स्त्रियों के लिए, समाज के लिए भावनात्मक, आदर्शात्मक या पुरुष विरोधी साहित्य अवश्य लिखा है; परंतु स्वयं को लेकर यथार्थ के धरातल पर जो साहित्य लिखा है, वह आत्मकथ्य है। ऐसी आत्मकथाओं में स्त्री के सम्पूर्ण चरित्र का चित्रण बड़ी बारीकी से हुआ है। प्रत्येक स्त्री आत्मकथाकार की अपनी-अपनी सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति रही है, जिसके कारण उनके विषय या घटनाओं के चित्रण में विविधता है, परन्तु सभी के लेखन में एक भाव या विषय अवश्य मौजूद है- स्त्री स्वातंत्र्य। इस स्वतंत्रता के लिए वह आजीवन अपने पिता, पति, प्रेमी और समाज से जूझती दिखाई पड़ती है। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा की लेखिका अपनी मर्जी से आजीवन अविवाहित रहकर सभी शारीरिक सुखों (सेक्स सुख) को भोगती हैं, लेकिन वह सुख-शांति या अधिकार प्राप्त नहीं कर पाती हैं; जो एक विवाहित स्त्री अपने पति से प्राप्त करती है। वह अपने आप को असुरक्षित ही महसूस करती है। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में लिखती हैं कि- 'हमारी औरतें वह चाहे बालकटी हों या गाँव-देहात से आयी हों, कहीं भी सुरक्षित नहीं। उनके साथ कुछ भी घट सकता है। सुरक्षा का आश्वासन पितृसत्तात्मक मिथक है। स्त्री कभी सुरक्षित थी ही नहीं, पुरुष भी इस बात को जानता है। इसलिए सतीत्व का मिथक संवर्धित करता रहता है। सती-सावित्री होने का निर्देशन स्त्री को दिया जाता है। पर कोई स्त्री सती रह नहीं पाती। हाँ सतीत्व का आवरण जरूर ओढ़ लेती है या आत्मरक्षा के नाम पर जौहर की ज्वाला में छलांग लगा लेती है।'[4] स्त्री आत्कथाकारों में से रमणिका गुप्ता, पुष्पा मैत्रेयी, प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी ने यह स्वीकार किया है कि जाने-अनजाने, स्वेच्छा या जबरदस्ती परपुरुष या पारिवारिक पुरुषों से उनके शारीरिक संबंध रहे हैं। इस तरह के संबंधों में जीना कहीं न कहीं यह उनकी आजादी के सवाल को पुष्ट करता है जिसे पुरुष ने खुद तो भोगा है, लेकिन उस आजादी को भोगने से स्त्री (पत्नी या प्रेमिका) को सदैव वर्जित किया है। प्रभा खेतान का पुरुष मित्र डॉ0 सर्राफ(विवाहित) से अविवाहित होते हुए भी शारीरिक संबंध था, प्रेम था, समर्पण था; लेकिन डॉ0 सर्राफ का खेतान के प्रति वैसा प्रेम या समर्पण नहीं था; जिसकी पूर्ति के लिए खेतान ने एक अन्य पुरुष से भी स्वेच्छा से शारीरिक संबंध बनाये, परन्तु वह प्रेम और समर्पण उस पुरुष से भी न मिल सका जिसकी कामना खेतान करती हैं या स्त्रियाँ करती हैं। 'उसने मुझे छुआ.... मेरा हृदय जोरों से धड़क रहा था, उसने मुझे चूमा, पहले मेरी उंगलियाँ, फिर गालों, फिर होठों को। धीरे से उसने मेरा आंचल हटाया, ब्लाउज के बटन खोलने की चेष्टा करते ही मेरी देह सख्त होने लगी, यह मैं क्या कर रही हूँ? आतंक और भय से मैं पसीना-पसीना हो उठी, वह रुक गया था..... उसने धीरे से पूछा- 'तुम्हारी मर्जी नहीं है? नहीं मैं अपनी इच्छा से आयी हूँ... यह मेरी देह की जरूरत है। सिर्फ देह का समर्पण और मन.....? मन अब किसी को नहीं चाह सकता, वह तो हमेशा के लिए बुझ गया है। खैर, शरीर टकराए, पर मैं उस चेहरे में डॉक्टर साहब को खोज रही थी। मैं अपनी ही देह की प्रत्येक हरकत को साक्षी भाव से देखती रही थी। दो-एक बार हम और मिले। मुझे लगा मैं इस व्यक्ति से प्रेम नहीं करती। प्रेम और वासना का फर्क मुझे उसे दिन समझ आया।' [5]

यौन-शोषण के मामलों में पुरुष के प्रति स्त्रियों का नजरिया लगभग एक जैसा ही होता है। वह मानती है कि पुरुष अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए सभ्य-असभ्य सभी तरीकों को अपनाता है। स्त्री-देह-शोषण के संदर्भ में पुरुष का लक्ष्य वासना पूर्ति होती है। वह कभी-कभी रक्त-संबंधों को भी विस्मृत कर जाता है। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' सिद्धांत वाक्य को अधिकतर ताजपोश, सफेदपोश, दबंग और सामंतवादियों ने साकार किया है। आत्मकथा 'आपहुदरी' की लेखिका 'रमणिका गुप्ता' ने सामन्तवादी सोच वाले अपने नाना को एक स्त्री-शोषक के रूप में देखा है। 'एक तरीका जो सभी जगह समान है, वह है औरत का यौन-शोषण। बड़े लोग छिपकर शालीनता की ओट में खुलेआम सबकुछ करते हैं। यह दोहरे मापदंड की दोहरी-दुमुँही चाल मेरे मन में बचपन से ही चोट करती थी। मेरा परिवार भी इन दोहरे मापदण्डों में अग्रणी था क्योंकि सामन्त था।'[6] अर्थात् सामन्ती सोच रक्तिम सम्बन्ध (लेखिका के नाना और मौसी के बीच अवैध सम्बन्ध) को भी नहीं बख्शती है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अविवाहित या विवाहेतर यौन-सम्बन्धों को स्वीकृति प्राप्त नहीं है; इसके बावजूद यौन-सम्बन्ध जाने-अनजाने, स्वेच्छा या बलात् गाहे-बगाहे देखने-सुनने को मिलते रहते हैं। डॉ0 प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या की लेखिका) का बाल-यौन-शोषण उसका स्वयं का भाई करता है; इसके बावजूद प्रभा खेतान स्वयं अपनी इच्छा से अविवाहित होते हुए भी विवाहित पुरुष डॉ0 सर्राफ से गर्भवती हो जाती है। अत: सभी पुरुषों को यौन-शोषक नहीं कहा जा सकता है। इस आशय की स्वीकारोक्ति प्रभा खेतान की स्वयं की है। 'यदि किसी को मालूम पड़ जाए तो दुनिया की नजर में मेरी क्या इज्जत रहेगी। खुद अपनी ही नजर में मेरी कोई इज्जत नहीं बची। डॉक्टर साहब ने तो मना किया था, वह मेरी करनी थी... मैंने ही पहल की थी, मैंने ही उनसे सब कुछ मांगा था।'[7]

जब से महिलाओं को स्त्री-शिक्षा का अधिकार और अवसर प्राप्त हुआ है, तभी से वह अपने पंख पसारने के लिए तत्पर रही है। यह अलग बात है कि उसके पर कतरने के लिए पुरुष मानसिकता सदैव क्रियाशील रही है। पुरुष नहीं चाहता रहा है कि एक स्त्री अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करे, अपनी मान-पताका सर्वत्र फैलाये; वह तो सिर्फ उसे दासी या यौन-वस्तु के रूप में देखता आया है। इस संदर्भ में चाहे रमणिका गुप्ता हों, जिनका पति प्रकाश सदैव रमणिका को संदेह के नजरिया से देखता आया है; चाहे मैत्रेयी पुरुष का पति डॉ0 शर्मा हो जो मैत्रेयी को पुरुषों की छाया (डॉक्टर मित्रों, लेखकों, संपादकों) से दूर रखना चाहता है, चाहे डॉ0 प्रभा खेतान का प्रेमी डॉ0 सर्राफ हो, जो खेतान पर एकाधिकार चाहता है- सभी ने स्त्री को मानसिक रूप से स्वतंत्र होने का अवसर नहीं दिया है। माँ-बेटी के पारस्परिक संवाद में मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि- 'यह परिवार उस समाज का हिस्सा है बबली, जहाँ

औरतें केवल शरीर के रूप में होती हैं, जो पुरुषों की सेवा-सुविधा के लिए श्रम कर सकें। इसके अलावा वे यौनि रूप में रहती हैं कि पुत्रवती होकर वंशबेल बढ़ाएँ, बेटी पैदा करें तो अगली पुरुष पीढ़ी के काम आए।' [8]

1876 ई. में रससुंदरी देवी की बांग्ला भाषा में लिखित पहली आत्मकथा 'आमार जीबोन' में असमानता और अन्याय के कारण दुर्दशा को प्राप्त हुए स्त्री-जीवन के दबे-ढँके को जिस साहस और प्रतिरोधी चेतना के साथ सार्वजनिक किया गया था, वही साहस बांग्ला, मराठी आदि भाषाओं के संग-संग हिंदी की अनेक आत्मकथाओं में भी मुखरित हुआ। महिला आत्मकथाओं की दृष्टि से बांग्ला में रससुंदरी देवी की आत्मकथा के बाद 'आमार कोथा' (बिनोदिनी दासी 1912 ई), 'आत्मकोथा' (देवी शरदसुंदरी-1913), 'सेकाले कोथा' (निस्तारिणी देवी-1913), 'पूर्वकोथा' (प्रसन्नमयी देवी-1917 ई.), 'अमियबाला की डायरी' (अमियबाला-1929 ई.), 'जीवन स्मृति' (सुदक्षिणा सेन-1932 ई.) आदि आत्मकथाओं का लगातार रचा जाना यही सूचित करता है कि सामाजिक सुधारों के उस दौर में स्त्री भी जाग रही थी और वह अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से पुरुष के सार्वजनिक और निजी जीवन के अन्तर्विरोध को उजागर कर रही थी। मराठी में 'अमाच्या आयुष्यांतील कांही आठवणी' (रमाबाई रानडे-1910 ई.), 'स्मृति तरंग' (अन्नपूर्णा बाई रानडे-1931 ई.), 'स्मृति चित्रेय (लक्ष्मीबाई तिलक-1934 ई.), 'जीवन नृत्य' (मीनाक्षी साने-1934 ई.), 'माझी कहानी' (पार्वतीबाई अठावले-1936 ई.) आदि आत्मकथाओं में भी स्त्री-पुरुष असमानता की पीड़ा और छटपटाहट देखी जा सकती है। मराठी में दलित लेखिकाओं ने भी अपने तिहरे शोषण को बड़ी निर्भीक अभिव्यक्ति दी है, जिनमें कुमुद पावड़े की आत्मकथा 'अन्त:स्फोट', बेबीताई कांबले की 'जीवन हमारा', शान्ताबाई कांबले की 'माझ्या जलमाची चित्तरकथा', मुक्ता सर्वगोड़ की 'मिटलेली कवाड़े' तथा जनाबाई गिरहे की 'मरणला' उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में किसी महिला द्वारा लिखित पहली ज्ञात आत्मकथा 'दु:खिनीबाला' द्वारा रचित 'सरला: एक विधवा की आत्मजीवनी' है, जिसमें प्रतिरोध की प्रतिज्ञा का प्रमाण मिल जाता है। 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के जुलाई, 1915 से मार्च, 1916 तक के अंकों में इस आत्मजीवनी का धारावाहिक रूप से प्रकाशन हुआ था। बाल-विवाह और विधवा-विवाह जैसी विकट समस्याओं का शिकार बनी एक स्त्री, समाज द्वारा दिए गए तिरस्कार और अपमान से व्यथित हो उन परंपराओं पर प्रश्न चिन्ह लगाती है, जिनके कारण वह अपने किसी अपराध के बिना ही 'कुलक्षिणी' घोषित कर दी जाती है। दु:खिनीबाला की इस आत्मकथा के बाद हिंदी में महिला-आत्मकथाओं के क्षेत्र में पसरा लंबा सन्नाटा चौंकाता है। 'हंस' के आत्मकथा विशेषांक (1932 ई.) में श्रीमती यशोदा देवी और शिवरानी देवी के आत्मकथांश अवश्य प्रकाशित हुए थे, पर उनमें कितनी प्रामाणिकता है, कहना कठिन है; क्योंकि उक्त कथांश अवश्य लिखे गए हों पर आज अज्ञात हैं। दु:खिनीबाला की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' (लिपिक श्री ऋषभ देव रांका) बोल कर लिखाई गई थी। बीसवीं शताब्दी बीतते-बीतते हिंदी क्षेत्र की स्त्रियाँ अपना मौन तोड़ती हैं और एक के बाद एक कई आत्मकथाएँ साहित्यिक परिदृश्य पर उभरती हैं। इनमें पदमा सचदेव की 'बूँद बावड़ी', कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा', कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया', मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी', प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया', चन्द्रकिरण सौनरिक्सा की 'पिंजरे की मैना', रमणिका गुप्ता की 'हादसेय आदि महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी, पंजाबी, मलयालम, मराठी, बांग्ला आदि भाषाओं से अनूदित आत्मकथाओं से भी हिंदी जगत् सम्पन्न हुआ, जिनमें कमला दास, तहमीना दुर्रानी, अमृता प्रीतम, अजीत कौर, दलीप कौर टिवाणा, तसलीमा नसरीन, बेबी हालदार, नलिनी जमीला आदि की आत्मकथाएँ उल्लेखनीय हैं। ये आत्मकथाएँ अपने समय और समाज की तल्ख सच्चाइयों की साक्षी तो हैं ही, इन्हें स्त्री-उत्पीड़न और उसकी प्रतिरोधी चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज भी कहा जा सकता है। ऐसा नहीं है कि स्त्री के उत्पीड़न पर पुरुष-रचनाकारों की दृष्टि नहीं गयी, परन्तु स्वयं भुक्तभोगी न होने के कारण वे इस उत्पीड़न की तीव्रता को कैसे समझ सके। इस हकीकत को प्रख्यात हिंदी लेखिका प्रभा खेतान यूँ बयाँ करती हैं कि 'स्त्री की जिंदगी के बारे में पुरुष-लेखन ज्यादा-से-ज्यादा अर्धसत्य का ही दावा कर सकता है। स्त्री के शोषण-उत्पीड़न पर चर्चा की गई और आँसू बहाए गए, मगर समाज की इस भेदभाव वाली संरचना के विकल्प में बिल्कुल नहीं सोचा गया। व्यवस्था से मुक्ति की चाहना को अपने लेखन में जितनी शिद्दत से वह (स्त्री) महसूस करती है या जितनी गहराई से तन्मय होकर अपने उत्पीड़न और शोषण को वह अभिव्यक्त कर पाती है उतना पुरुष लेखन द्वारा संभव नहीं। पितृसत्तात्मक दमन जितना करीब से स्त्री ने देखा और झेला है, उतना अन्य किसी से नहीं।' यही कारण है कि इन आत्मकथाओं दमन और शोषण की ही अभिव्यक्ति नहीं हुई, इनमें स्त्री द्वारा निजी और सार्वजनिक जीवन में किए गए प्रतिरोध का इतिहास भी मौजूद है।

अपने जीवन-सत्य को समाज के सामने अनावृत्त करना अंगारों पर चलना जैसा है, जिसे महिला आत्मकथाकारों ने चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। सच तो यह है कि जिसने अपने जीवन में जितना अधिक शोषण-उत्पीड़न सहा है उसमें उतनी ही शिद्दत से उसे बेपर्दा करने का संकल्प भी जागा है। एक आत्मशक्ति-संपन्न स्त्री को अन्याय के प्रतिरोध का सबसे कारगर तरीका यही प्रतीत होता है कि वह अपने-आप को समाज के सामने उजागर करने के लिए कलम का सहारा ले। कलमकार आत्मकथा-लेखिकाएँ अपने साथ-साथ पाठक को यातना की उन अंधी सुरंगों में ले जाती हैं, जहाँ सामाजिक और पारिवारिक क्रूरता के हाथों स्त्री नहीं, स्त्री के रूप में मानवता अपमानित होती है। इन अंधी-अँधेरी सुरंगों में पहुँचकर पाठक बेचैन हो जाता है, छटपटाता है। यह बेचैनी, छटपटाहट उस प्रतिरोध की जन्मभूमि है जिसमें पाठक को जगाना ही आत्मकथाओं का एक प्रमुख प्रयोजन कहा जा सकता है। इक्कीसवीं शताब्दी की पहली दशाब्दी में हिन्दी की तीन महिला-आत्मकथाकारों की आत्मकथाएँ अत्यंत चर्चित रहीं- मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान और मैत्रेयी पुष्पा। चर्चा के कई कारण थे- कभी अंतरंग संबंधों का उद्घाटन, कभी विवाहोत्तर संबंधों की निर्भीक स्वीकृति, कभी यौन-प्रसंगों का खुला वर्णन। अपनी 'बोल्डनेस' के कारण इन आत्मकथाकारों की तुलना पंजाबी-उर्दू-अंग्रेजी की कुछ आत्मकथाकारों- तसलीमा नसरीन, तहमीना दुर्रानी, अमृता प्रीतम, अजीत कौर, कमला दास आदि से की जाती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश की आत्मकथाएँ एक विस्तृत कैनवास पर उकेरी गई हैं। इन आत्मचरित्रों में निजी उत्पीड़न के उद्घाटन के साथ-साथ उससे जूझती स्त्री का साहसिक अभियान भी दर्ज है, सामाजिक और राजनीतिक मूल्यहीनता का पर्दाफाश भी है, पितृसत्ता के घिनौने षड्यंत्रों का अनावरण भी है, और है मानव समाज के लिए एक सुंदर-सुखद भविष्य की तलाश भी; क्योंकि इस तलाश के बिना प्रतिरोध का सकारात्मक रूप उजागर नहीं हो

सकता। स्मृतियों को पाथेय बनाकर जब ये आत्मकथा-लेखिकाएँ अपने अतीत में झाँकती हैं तब उनका सामना एक दर्दनाक दमन और उत्पीड़न के सच से होता है, जिसका सिलसिला उनके अबोध बचपन से ही जारी रहा है।

माता-पिता के प्यार-दुलार के साये में किसी बच्चे का बचपन कितना सुरक्षित व सुखद हो सकता है। इस भरे-पूरे अहसास से स्त्री आत्मकथाकार प्राय: वंचित ही रही हैं। इसके कारण अलग-अलग हो सकते हैं, जैसे कि अपनी-अपनी पारिवारिक, सामाजिक या सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि। गहन आत्मनिष्ठता, अहंभाव या विशिष्टता की चाह में अपनी ही कुंठाओं का शिकार बने मन्नू भंडारी के पिता अपने बच्चों के लिए स्नेह नहीं, भय का आलंबन बने रहे। उनके भय से थर-थर काँपती मन्नू की माँ अपनी व्यक्तित्वहीनता के कारण अपनी संतान के प्रति किसी प्रकार का आदर्श नहीं बन सकी। दूसरी ओर एक अत्यंत समृद्ध मारवाड़ी परिवार में जन्म लेने के बावजूद प्रभा खेतान का बचपन भी अनाथ, उदास और कुंठित था। घर की पाँचवी बेटी के रूप में वह अनचाही थी। एक के बाद एक जच्चगियों के कारण जर्जर शरीर वाली अम्मा अपनी इस बेटी को सदा उपेक्षित-प्रताड़ित करती रही और उसे दाई माँ के स्नेह की डोर पकडकर अपना बचपन बिताना पड़ा। तहमीना दुर्रानी का बचपन भी प्रभा से कुछ अलग न था। समाज के अत्यंत उच्च वर्ग से सम्बद्ध होने के बावजूद उसका बचपन माता-पिता के प्यार के लिए तरसता रहा। दबंग फैशनेबुल माँ तथा उच्च पदस्थ होते हुए भी पत्नी की उपेक्षा-प्रताड़ना झेलते पिता के आपसी संबंधों का तनाव तहमीना को आक्रान्त किये रहता था। माँ का आतंक सदा ही उस पर हावी रहता था। मैत्रेयी का बचपन तो और भी भयावह था! डेढ़ साल की मैत्रेयी को अनाथ कर पिता स्वर्ग सिधार गए और शिक्षा के उजाले में आने के लिए व्याकुल माँ ने नन्हीं मैत्रेयी के जीवन का उजाला छीना। दूर-पास के परिचितों के सहारे बचपन बिताती मैत्रेयी बार-बार दैहिक उत्पीड़न के खौफनाक दौर से गुजरती है। माँ के प्यार भरे आँचल के लिए वह तरसती ही रह जाती है और नन्हीं दीप घर में सबकी लाड़ली होते हुए भी 'बेटे' के लिए तरसते उसके कुटुंब का सोते-जागते, उठते-बैठते 'बेटा-बेटा' रटना उसे बेटियों की दोयम स्थिति का अहसास तो करा ही रहा था। दिन-रात शराब के नशे में गर्क रहने वाले पिता तथा दबी-कुचली व्यक्तित्वहीन माँ की संतान होने का दंड भी उसे भोगना पड़ा- माँ-बाप को छोड़ दूर शहर में बुआ के पास रहने के रूप में। इन नायिकाओं के भावी प्रतिरोध का एक बहुत बड़ा कारण इनका 'असामान्य' बचपन ही है। सभी नायिकाओं का अपने 'काले रंग' के कारण या फिर 'असुंदर' होने के कारण, या 'मरियल' होने के कारण अपने ही माता-पिता या घर-परिवार वालों के ताने-उलाहने सुनने पड़े थे या अपने अन्य भाई-बहनों से तुलना के अनंतर उपेक्षा और तिरस्कार का जहर पीना पड़ा था। कल्पना की जा सकती है कि अबोध-मासूम बचपन को जब प्यार की जगह तिरस्कार मिले तो कैसी हीन भावना जागती होगी। उसमें आत्मविश्वास कैसे तार-तार होता चला जाता होगा। प्रभा और मैत्रेयी जैसी नायिकाएँ तो यौन-शोषण का शिकार भी हुईं। प्रभा अपने ही सगे भाई द्वारा और मैत्रेयी सहपाठी लड़कों या दूर-पास के परिचितों द्वारा छली गई हैं। कैसा भय और आतंक जागता होगा उस समय। अपने 'लड़की जात' होने से घृणा होने लगती होगी, अपना वजूद बवंडर में उड़ता दीखता होगा। ताने-उलाहने, उपेक्षा-तिरस्कार, हिंसा-प्रताड़ना- क्या ये सब मिलकर इन नन्हीं बच्चियों के मन में भय के साथ-साथ आक्रोश नहीं पैदा करते होंगे? अवश्य करते होंगे। पितृसत्ता के जिस घिनौने रूप से उनका परिचय बचपन की नादान उम्र में हो गया था, उसके खिलाफ प्रतिशोध का संस्कार भी तभी से जाने-अनजाने उनमें जड़ जमाने लगा होगा।

पितृसत्ता के दायरे में विकसित होती हर लड़की का सबसे हसीन सपना है- विवाह। वास्तव में ढेरों बंदिशों-पाबंदियों के बीच बचपन गुजारती हर लड़की को लगता है कि इस बंधन से मुक्ति का एक ही मार्ग है- विवाह; इसीलिए 'विवाह' के लिए उसकी उत्सुकता, तड़प, उसका आकर्षण दिनोंदिन बढ़ता जाता है। प्रतिरोध का जो भाव माता-पिता या कुटुंबियों के प्रति प्रखर होता जाता था, वह इस विवाह की आड़ में अपना खेल खेलने के लिए सन्नद्ध हो जाता है। लड़की सोचती है कि वह अपनी मनमर्जी से अपना जीवन-साथी चुन अपने प्रतिरोध का बिगुल बजाएगी। अब वह बड़ी हो चुकी है- सोचने समझने लगी। वह गाय-बकरी तो नहीं कि माँ-बाप जहाँ चाहें हाँक दें। जाने-अनजाने वह 'विवाह' के रूप में कुछ ऐसा करना चाहती है, जिससे माँ-बाप के सामने वह अपना वजूद प्रमाणित कर सके। वह एक ऐसा साथी खोजना चाहती है जिससे जुड़कर वह माँ-बाप की नजरों में अपने तिरस्कृत वजूद के लिए 'स्वीकार और सम्मान' का भाव देख सके, कोई ऐसा जिसकी प्रतिष्ठा माँ-बाप से अधिक हो। जाने-अनजाने ही लड़की का प्रतिरोध-भाव माँ-बाप को दुश्मन या कम-से-कम विरोधी के पाले में तो धकेल ही देता है और अपने लिए अपनी मर्जी का साथी चुन वह प्रतिशोध की अपनी धारणा को प्रमाणित कर देती है। स्त्री आत्मकथाओं में इस धारणा को देखा जा सता है। मन्नू भंडारी अपने पिता के सारे विरोध को धता बताते हुए एक विजातीय 'राजेन्द्र यादव' से प्रेम-विवाह करती है और पिता के खिलाफ अपने प्रतिशोध का शंखनाद करती है। प्रभा खेतान अधेड़ उम्र के एक विवाहित बाल-बच्चेदार डॉक्टर सर्राफ के साथ जीवन भर के लिए एक अनब्याहे बंधन में बँधकर अपना प्रतिशोध दर्ज कराती है। मैत्रेयी अपनी माँ के 'विवाह विरोधी' अभियान की धज्जियाँ उड़ाते हुए अपनी माँ को विवश करती है कि वे उसके लिए जीवन-साथी चुने। 'तहमीना' पहले अनीस और फिर मुस्तफा से प्यार और निकाह कर अपनी तानाशाही माँ से प्रतिशोध भी लेती है और प्रतिस्पर्धा भी करती है और 'दीपय अपनी इच्छा के विरुद्ध बलात् किए गए विवाह के बंधन को तोड़कर, तलाक लेकर वह अपना प्रतिरोध प्रमाणित करती है। जिस मन-मर्जी विवाह को अपनी मुक्ति का मार्ग समझ कर बड़े अरमानों के साथ इन आत्मकथाकारों ने स्वीकार किया था, उसी का भीतरी सच इतना भयावह होगा, वे नहीं जानती थीं। दैहिक हिंसा और यौन-उत्पीड़न (मेरे आका), पति के विवाहेत्तर संबंध (एक कहानी यह भी), पति की नपुंसकता (नंगे पैरों का सफर), परंपरा और मर्यादा के नाम पर पत्नी को कठोर बंधनों में जकड़ना या बेटियों को जन्म देने के अपराध में उसे अपमानित-प्रताड़ित करना (कस्तूरी कुंडल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया), घर-गृहस्थी के सारे दायित्व उसे सौंपकर खुद मौज-मस्ती की समानांतर जिन्दगी जीना (एक कहानी यह भी), उसके व्यावसायिक जीवन का पूरा नियंत्रण रखना (अन्या से अनन्या) आदि व्यवहारों से थर्रा देने वाली इन क्रूरताओं के कारण घर-गृहस्थी जब यातना-घर बनकर रह जाए और वैवाहिक जीवन का कोमल-मधुर सपना चिंदी-चिंदी होकर बिखर जाए तब ऐसी स्त्री भीतर ही भीतर सुलगते आक्रोश व प्रतिरोध को समाज के सम्मुख मुखर होकर व्यक्त करती है और सारी वर्जनाओं को एक ही झटके में तोड़कर घुटन भरे माहौल से बाहर निकलकर खुली हवा में साँस लेने लगती है।

भारतीय नारियाँ संबंधों को कपड़ों की तरह पहनती-उतारती नहीं है। वे घर-परिवार के महत्व से परिचित होती हैं और जानती हैं कि परिवार का

सबसे महत्वपूर्ण आधार 'स्त्री-पुरुष' संबंध है। पुरुष के क्रूर-मर्यादाहीन व्यवहार के कारण उनके लिए 'घर' में बने रहना आसान नहीं होता है। वह यह भी जानती हैं कि परिवार में पति-पत्नी के अलावा अन्य सदस्य भी होते हैं, जिनके प्रति उनका भी दायित्व होता है। दायित्वबोध के कारण वह न तो उनसे नेह का नाता तोड़ पाती है और न ही अपने बच्चों से मुँह मोड़ पाती है। वह उन्हें पिता की छाया से कैसे वंचित कर दे। अपने अनाथ बचपन की कटु स्मृतियाँ अवश्य ही उन्हें ऐसा कदम उठाने से रोकती होंगी, जिसके नतीजे में उनके अपने बच्चों के बचपन की खिलखिलाहट व मासूमियत छिन न जाए। 'आपका बंटी' लिखने वाली मन्नू अपनी बेटी 'टिकू' को 'बंटी' बनते कैसे देख सकती थी। मैत्रेयी अपनी तीनों बेटियों को पिता के प्यार के लिए तरसते कैसे देख सकती थी। यहाँ तक कि तहमीना ने भी यही अनुभव किया कि क्रोधावेग में बच्चों के प्रति क्रूर व निर्दय कहे जाने वाला पति मुस्तफा सामान्य स्थिति में बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव से भरा रहता है। वह कैसे छीन ले अपने बच्चों से वह इस वात्सल्य को। प्रभा खेतान डॉ0 सर्राफ के साथ जिस बिन विवाह के रिश्ते में बँधी थी, वह भी उसे निभाती चली गई। इसके पीछे एक क्षीण सा कारण इस अपराध-बोध से अल्पांश में निवृत्ति पाना भी था कि उसके (प्रभा खेतान) कारण डॉक्टर साहब के बच्चों से प्यार व सुकून का जीवन छिन गया है।

आत्मकथाओं की कथा-नायिकाएँ सुशिक्षित भी हैं और जागृत विवेक की स्वामिनी भी; इसलिए वैवाहिक जीवन के उत्पीड़न को सहते हुए भी उनका विवाह संबंधों को न तोड़ना उनकी 'कायरता' नहीं कही जा सकती। साहस की कमी उनमें कहीं नहीं थी, इसे वे अपने कर्मठ-जुझारू व्यक्तित्व से प्रमाणित कर चुकी थीं। इसे उनकी 'संस्कारधर्मिता कहना भी शायद पूरी तरह ठीक नहीं होगा। तलाकशुदा या परित्यक्ता होने का सामाजिक भय असुरक्षा के अहसास का कारण हो सकता है, लेकिन मूल कारण नहीं। चेतना-प्रबल ये स्त्रियाँ गहरे सोच-विचार के अनन्तर इस नतीजे पर पहुँची थीं कि तलाक या अलगाव समस्या का समाधान नहीं है; क्योंकि घर की लक्ष्मण-रेखा से बाहर सब कुछ मनचाहा ही होगा, कौन जाने? इसकी क्या गारंटी? घर से बाहर भी तो कदम-कदम पर समझौते करने पड़ते हैं। इसलिए शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक संबल के लिए घर एक अनिवार्य जरूरत है। घर-परिवार के मौजूदा ढाँचे का सुधार अपेक्षित है, समूल नाश नहीं। कुल मिलाकर यह कि उनका विवेक उन्हें बार-बार चेता रहा था कि घर बहुत जरूरी है। कम-से-कम भारतीय उपमहाद्वीप के परिवेश में तो घर-परिवार की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें न तो आसानी से उखाड़ा जा सकता है और न ही ऐसा करना उपयोगी ही होगा। शायद हमारी ये आत्मकथा-नायिकाएँ नारीवाद के आरोपति या पश्चिम से आयातित फलसफे की भारतीय परिवेश के संदर्भ में जाँच-परख मन ही मन करती रही होंगी। परिवार की निस्सारता को लेकर पश्चिम में हुई तमाम घोषणाओं के बावजूद ये विवेकधर्मा स्त्रियाँ भारतीय संदर्भों में इस निष्पत्ति से सहमत नहीं हुई होंगी। यह सही है कि जीवन का आंदोलन नारों के अनुकरण पर नहीं जिया जा सकता। उसकी अपनी ही रवानगी, अपनी ही लय-गति रहती है। इतना तो सहज संभाव्य है कि दिमाग के बंद कपाटों को खोलने का काम जिन विचारों द्वारा किया जाता है उससे व्यक्ति का व्यवहार जाने-अनजाने प्रभावित हो जाता है। स्त्री-विमर्श ने स्त्रियों के व्यक्तित्व को गढ़ने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सभी स्त्री आत्मकथा-नायिकाओं ने अपने-अपने जीवन-अनुभव के आलोक में स्त्री-विमर्श का एक ऐसा मॉडल रचा है जो ग्लोबल होने के साथ-साथ स्थानीय भी है। निश्चय ही स्त्री-विमर्श के इस मॉडल में 'परिवार' अस्वीकार नहीं, उसके मौजूदा रूप में संशोधन का जबर्दस्त आह्वान है। प्रतिरोध परिवार का नहीं, उसमें व्याप्त शोषण का है। इसीलिए मैत्रेयी लिखती हैं-'भले यह घर मेरे लिए युद्धस्थल बन जाए, मगर मेरे पाँव तो इस जमीन पर जमें हैं। यहाँ खड़ी रहकर ही मैं बाड़े तोड़ने की ताकत पाती हूँ। रास्ते निकालती हूँ। मैं अपने मुक्ति-वृक्ष को कहीं और जाकर क्यों रोपूँ? छाया, ताजगी और आक्सीजन की जरूरत सबसे पहले मेरे घर को है। हाँ, ऐसा ही वृक्ष हर घर में हो, जिसमें स्त्री रहती है।' इसी संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि 'कहा जाता है कि नारीवाद पारिवारिक मूल्यहीनता को प्रश्रय देता है या फिर वह पारिवारिक संरचनाओं को तोड़ देना चाहता है। वास्तविकता कुछ और है। अगर पारिवारिक संरचनाएँ मानवीय हैं तो अपनी वैचारिक संभावनाओं सहित नारीवाद परिवार और समाज के मानवीय मूल्यों को नष्ट करने के बजाय उन्हें बचाना चाहेगा। वह पारंपरिक समाज-व्यवस्था को परिवर्तित जरूर करना चहता है, लेकिन बदलाव को टूटना तो नहीं कहा जा सकता। परिवार स्त्री की सबसे पुख्ता जमीन है। यदि इस जमीन पर खड़े होकर वह यथास्थिति के परिवर्तन के पक्ष में है और अन्य व्यापक सामाजिक जिम्मेदारियों को स्वीकारना चाहती है, तो इसे गलत क्यों कहा जाना चाहिए?'

मन्नू भंडारी का तीन दशक से भी अधिक समय तक राजेन्द्र यादव के साथ एक अप्रीतिकर संबंध में बँधे रहना, तहमीना का मुक्ति की कामना से बार-बार घर को छोड़ना और फिर-फिर लौट आना, प्रभा का डॉ. सर्राफ द्वारा दिये गए सारे उत्पीड़न को सहने के बावजूद अंत तक उनसे जुड़े रहना और मैत्रेयी का खट्टे-मीठे अनुभवों से गुजरते हुए भी घर-परिवार की महत्ता को मुक्त कंठ से स्वीकार करना, वास्तव में भारतीय उपमहाद्वीप की स्त्री के उस चिन्तन की ओर ही संकेत करता है, जहाँ वह परिवार-धर्म के बीच में से ही नारी मुक्ति का मार्ग खोजना चाहती है, उससे किनाराकशी करके नहीं। कहने वालों ने तरह-तरह के आरोप लगाए हैं- कि यह कैसी नारी मुक्ति कि लगभग पैंतीस बरस तक राजेन्द्र यादव के अत्याचारों को मन्नू जी सहती चली गई? कि एक सफल व्यवसायी होते हुए भी प्रभा की डॉ. सर्राफ से जुड़े रहने की कैसी विवशता? कि देह-विमर्श का राग अलापने वाली मैत्रेयी फिर छोड़ क्यों नहीं देती अपने घर को? समझ में नहीं आता कि एक ओर तो स्त्री-विमर्श से जुड़ी नारियों पर घर तोड़ने के आरोप लगते हैं और दूसरी ओर यदि वे घर को बचाने के लिए जद्दोजहद करती हैं तो उनके 'स्त्री-विमर्श' को कठघरे में घसीट लिया जाता है। यह क्यों नहीं समझा जाता है कि स्त्री-विमर्श शोषण या उत्पीड़न के विरुद्ध है। भारतीय संदर्भों में इसकी सबसे बड़ी सार्थकता यही हो सकती है कि यह परिवार में व्याप्त शोषण का प्रतिरोध करे, न कि परिवार को ही खत्म करने का बिगुल बजा दे। निश्चित ही स्त्री-विमर्श के आंदोलन के दौरान ऐसी नारेबाजियाँ भी हुई हैं, जिनमें विवाह और परिवार के समूल नाश की कामना भी की गई; परन्तु ऐसी कामनाओं का विरोध करते हुए भारतीय परिदृश्य में परिवार-संस्था की स्थिति और महत्ता को समझने का आह्वान भी तो किया गया है। कथा-नायिकाओं का प्रतिरोधा 'विवाह', 'परिवार' या स्त्री-पुरुष संबंधों के दायरे में आने वाले उत्पीड़न तक ही सीमित नहीं है। ये आत्मकथाएँ एक विस्तृत कैनवास पर उकेरी गई हैं, इसीलिए इनमें इन लेखिकाओं का समय और समाज विविध रूप में जिंदा है- अपनी विविध छवियों के साथ, अपने उजले और स्याह पक्षों के साथ। तहमीना की आत्मकथा में पाकिस्तानी समाज में पसरे धर्म और राजनीति के घिनौने दुर्व्यवहारों का उल्लेख ही नहीं है, इनसे जूझने की

जद्दोजहद का भी मार्मिक आख्यान भी है। वर्ग-वैषम्य, भ्रष्ट राजतंत्र, धर्म की मनगढ़ंत व्याख्याएँ, गरीब-अशिक्षित जनता, क्रूर व अमानवीय जेल-तंत्र, पाकिस्तानी समाज का भीतरी यथार्थ तहमीना की प्रतिरोधी कलम के माध्यम से दुनिया के सामने बेपरदा हुआ है। तहमीना ही नहीं; मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, दलीप कौर टिवाणा- सबकी आत्मकथाओं का पाठ हमें बीसवीं सदी के इतिहास की यात्रा पर ले चलता है। आजादी से भी पहले का भारत अपनी सारी हलचलों और कुर्बानियों के साथ स्त्री की केन्द्रीय भूमिका के साथ मौजूद रहा है। वस्तुत: यह स्त्री की आँख से देखा गया इतिहास है, इसीलिए इसमें स्त्री का शोषण उत्पीड़न उसके प्रतिरोधी संकल्प के साथ अंकित है।

स्वतंत्र भारत में देखे गए न्याय और समानता के सपने, धीरे-धीरे इन सपनों का बिखरना, समाजवाद के नारों के बावजूद स्थापित होता पूँजीवाद, बढ़ता वर्ग-वैषम्य, विदेशी आक्रमण, भीतरी असंतोष, आपातकाल, भ्रष्ट राजतंत्र, धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियाँ, उजड़ते गाँव, फैलते शहर, जीवन-मूल्यों का ह्रास, विदेशों में भारत की नकारात्मक छवि, राष्ट्र-भाषा का प्रश्न, शिक्षा से स्वावलंबन तक का स्त्री का सफर, गर्भधारण, गर्भपात और प्रजनन जैसे मुद्दे यहाँ मौजूद हैं और साथ ही मौजूद है स्त्री की प्रतिरोधी चेतना। अंग्रेजी सत्ता के विरोध में नारे लगाती, जैन साधियवों से धर्म के आडंबरों पर बहस करती और एक विजातीय व्यक्ति से विवाह करती (मन्नू भंडारी), विवाह की मंडी में बिकने का पुरजोर विरोध करती, सती-प्रथा को निस्सारता समझाती व परावलंबन से मुक्ति के लिए संघर्ष करती (मैत्रेयी की माँ कस्तूरी), यौन हिंसको से जूझती, नैतिक वर्जनाओं को लाँघती व प्रकाशन-तंत्र में फैले पाखंड का पर्दाफाश करती (मैत्रेयी पुष्पा), व्यावसायिक दुनिया में स्त्री की पहचान बनाने के लिए श्रम करती (प्रभा खेतान), घर-परिवार में फैली विषमताओं व रूढ़ियों का विरोध करती (दीप) स्त्री प्रतिरोध की भावी सफलता का ही सूत्रपात करती है। डॉ. सर्राफ के सारे किन्तु-परन्तु के बावजूद पुरूष सत्ता द्वारा कदम-कदम पर खड़े किए गए अवरोधों से मुठभेड़ करते हुए प्रभा एक सफल व्यावसायिक स्त्री के रूप में अपना लोहा मनवा ही लेती है। संपादन व प्रकाशन की दुनिया की लोलुप पुकारों और कामुक दृष्टियों का सामना करते हुए मैत्रेयी पुष्पा अपनी कलम की पहचान बनाती है। वाम और दक्षिण ध्रुवों में बँटी साहित्य की दुनिया में रहते हुए भी मन्नू भंडारी जड़ प्रतिबद्धताओं से स्वयं को मुक्त रखकर अपनी सहज मानवीय दृष्टि का परिचय देती है और पाठकों द्वारा प्रशंसित-अभिनंदित होती है। शिक्षा-जगत की विसंगतियों में जूझती है दिलीप कौर टिवाणा विद्यार्थियों की सर्वप्रिय प्राध्यापिका बनकर शिक्षा जगत् को एक नई दिशा और नई दृष्टि देती है। सच तो यह है कि स्त्री की चेतना जब जागती है तब वह भीतरी-बाहरी सारी वर्जनाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाती है, अपने आस-पास फैले शोषण को खुली आँखों से देखती है और भिड़ जाती है अन्यायी सत्ता के स्तम्भों से। हो सकता है उसकी शक्ति सीमित हो और प्रतिरोध का उसका तरीका दूसरों से भिन्न हो, मगर उसकी भीतरी छटपटाहट उसे संघर्ष के लिए विवश कर ही देती है। कभी-कभी यह प्रतिरोध बहुत मुखर व प्रत्यक्ष हो जाता है। कहीं यह प्रतिरोध छल-बल का प्रयोग करता हुआ दुश्मन के हथियारों से ही उसे चित कर देने वाला होता है। मैत्रेयी का प्रतिरोध ऐसा ही है। वह छल-कपट से भरे पैतृक समाज से कभी रूप बदल-बदल कर टकराती है तो कभी झुककर और कभी झुकाकर। कभी वह उत्पीड़न के सारे अमानवीय कृत्यों का वाचिक विरोध करते हुए भी अपनी उदात्त मानवीय वृत्तियों को नहीं छोड़ती और अपने दायित्वों को मौन भाव से निभाती चली जाती है। मन्नू भंडारी का प्रतिरोध भी ऐसा ही था। यह इस प्रतिरोध की ही शक्ति थी कि एक दिन उत्पीड़क पति को भी अपने अपराधा को स्वीकार करना पड़ा।

महिला-आत्मकथाओं का पाठ यह भी स्पष्ट कर देता है कि स्त्री के प्रतिरोध का लक्ष्य पुरूष को सत्ताच्युत कर खुद सत्तासीन होना नहीं है। उसका लक्ष्य तो एक ऐसी दुनिया का निर्माण करना है जो दमन के कुचक्रों से मुक्त होगी; जहाँ स्त्री व पुरुष एक-दूसरे के विरूद्ध नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक बनकर साथ-साथ चलेंगे; जहाँ दोनों के मानवाधिकारों की रक्षा होगी; जहाँ भिन्नताओं और बहुलताओं को घृणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि सृष्टि के आनंददायी उत्सव के रूप में स्वीकार किया जाएगा। सच्चा नारीवाद परंपरा के नाम पर जारी मूल्यहीनता का विरोध कर प्रकारांतर से मानव-मूल्यों का अभिषेक करता है। महिला-आत्मकथाएँ भी अपने प्रतिरोधी स्वरों के माध्यम से अन्तत: मानव-मूल्यों का वंदन-अभिनंदन ही करती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

संदर्भग्रंथ सूची:-

1. भंडारी मन्नू : एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17 जगतपुरी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2007, आठवाँ संस्करण (पेपरबैक्स)-2022, पृष्ठ संख्या-24
2. मैत्रेयी पुष्पा : गुड़िया भीतर गुड़िया, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2008, तीसरा संस्करण (पेपरबैक्स)-2016, पृष्ठ संख्या-12
3. मैत्रेयी पुष्पा : गुड़िया भीतर गुड़िया, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2008, तीसरा संस्करण (पेपरबैक्स)-2016, पृष्ठ संख्या-34
4. खेतान प्रभा : अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2007, छठा संस्करण (पेपरबैक्स)-2021, पृष्ठ संख्या-208
5. खेतान प्रभा : अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2007, छठा संस्करण (पेपरबैक्स)-2021, पृष्ठ संख्या-253
6. गुप्ता रमणिका : आपहुदरी, सामयिक प्रकाशन 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2015, पेपरबैक संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-70
7. खेतान प्रभा : अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2007, छठा संस्करण (पेपरबैक्स)-2021, पृष्ठ संख्या-96
8. पुष्पा मैत्रेयी: गुड़िया भीतर गुड़िया, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-2008, तीसरा संस्करण-2016 (पेपरबैक्स), पृष्ठ संख्या-131

****